टिप्पणी

राजस्थान में गणित यानी गणित में रेगिस्तान

रविकांत

रेगिस्तान में रहने वालों की जिंदगी आमतौर पर बेहद मुश्किलों से भरी होती है। अपने रोजमर्रा के जीवन की छोटी-बड़ी जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ती है। छोटे-बड़े कामों को पूरा करने के लए कई बार बेहद श्रम करना पड़ता है। बेहद गर्म दिनों, धूलभरी आंधियों, लू के थपेड़ों, मीठे पानी की किल्लत आदि को झेलना पड़ता है। रोजगार के साधनों में कमी की वजह से आय बहुत कम होती है। हर साल बहुत सारे लोग रोजगार के लिए कुछ माह के लिए परदेश चले जाते हैं और अपने परिजनों से बिछोह का समय अकाल के दिन में माह से लंबे होकर सालों में बदल जाते हैं और जो पीछे छूट जाते हैं वे अपने संगीत में रुदन के गहरे अहसास के साथ हर दिन जाने वालों के लौटने की आस संजोते जीते रहते हैं।

असली रेगिस्तान में रहने वालों की तो अपनों के लौटने की आस कई बार पूरी हो जाती है लेकिन राजस्थान में गणित की सरकारी किताबें जिस रेगिस्तान को रचती हैं उसमें प्रवेश करने के बाद उससे निकलने की उम्मीद रखना शायद नामुमकिन है। इसलिए ज्यादातर बच्चे बड़े होते न होते गणित से अपना पीछा छुड़ा लेते हैं, फिर कभी इसमें न लौटने के लिए। रेत के रेगिस्तान में तो आपको नखलिस्तान भी मिल जाते हैं जहां हरे भरे जंगल, मीठा पानी और जीव जनावर मिल जाते हैं। दर्द भरी ही सही लेकिन सुरीली स्वर लहरियां मिल जाती हैं लेकिन घनी अंधेरी काली रात से भी घनघोर काली स्याही से लिखे गए काले अंकों और उन अंकों की मदद से होने वाली संक्रियाओं के रेगिस्तान के बीच बच्चे ज्यादातर बार डरावने जीव जनावरों की ही उम्मीद कर सकते हैं और इस दुनिया में ऐसा कौन है जो खूंखार जीव जनावरों से नहीं डरता।

कहते रहें दुनिया के बड़े-बड़े गणितज्ञ कि गणित में बेहद खूबसूरत संगीत होता है। गणित में सुर होता है, लय होती है, ताल होती है। कहते रहें संगीतज्ञ कि संगीत गणित के बिना आगे नहीं बढ़ता है। लेते रहें बच्चे संगीत में बेहद रुचि और करते रहें वे गुनगुना कर या तुकबंदी कर अपनी भाषाई क्षमताओं का विकास। हम बड़े लोग बेहद कम ही सही, गीत कविता के बहाने आधा-अधूरा ही सही भाषा सिखाते समय कुछ तो संगीत का उपयोग कर ही लेते हैं। पर गणित को इस तरह सिखाएं कि बच्चे इसमें से संगीत का सा आनंद महसूस कर पाएं। तौबा-तौबा यह काम तो गणित की किताबें बनाने वालों के लिए गुनाहे बेलज्जत है। हां ऐसी किताब जरूर बना सकते हैं कि गणित का रहा सहा जादू या आनंद आए ही नहीं और यदि किसी बच्चे को गलती से आ भी जाए तो बड़ी मुश्किल से हाथ आए परिंदे की तरह फुर्र हो जाए।

गणित ही गणित का किस तरह से खून कर सकता है ये किताबें इस बात का भी पुख्ता सबूत पेश करती हैं। राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मंडल की किताबों में 88 वे पन्ने पर चूंकि यह कह दिया गया है 25 से 40 प्रतिशत विषय वस्तु और

लेखक परिचय :

लगभग 13 वर्ष से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत, शिक्षक प्रशिक्षण एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण में विशेष कार्य, वर्तमान में विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों के साथ बतौर सलाहकार कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क :

ए-68, पुरुषार्थ नगर-बी,

जगतपुरा, जयपुर - 302025

बाकी 75 से 60 प्रतिशत तक प्रायोगिक काम व अभ्यास हो सकते हैं और कक्षा एक और दो में इसके साथ ही गीत, चित्र, खेल सामग्री आदि दिए जा सकते हैं। तो बाकी कक्षाओं में खेल सामग्री या चित्र आदि को देने की तो कोई वजह ही नहीं बचती। 25 प्रतिशत का मतलब गणित के लिहाज से यह कि यदि किसी कक्षा की किताब में आने वाली आवधारणाओं के बंटवारे में जोड़ के हिस्से में आठ पन्ने आए तो दो पन्ने जोड़ के मतलब को जैसे तैसे समझाने में खर्च किए और बाकी हिस्से में मशीनी ढंग से किए जाने के लिए अभ्यास भर दिए। अब पन्नों में बांटने की बात कहते समय शिक्षाक्रम के पृष्ठ 88 पर यह तो कहा नहीं गया कि बंटवारे का उपयोग करते समय सबसे ज्यादा जरूरी बात दी गई अवधारणा की समझ बनाना है न कि सवालों की बजरी का ढ़ेर लगाना। अब जब बच्चों को पढ़कर या शिक्षक के बताने से अवधारणा समझ ही नहीं आए तो अभ्यास को करवाने की जिम्मेदारी भी शिक्षक की ही बन जाती है। कोई किताब लिखने वालों को प्राथमिक स्कूल में जाकर बच्चों के साथ काम थोड़े ही करना है जो वे इस बात की चिंता करें फिर भले ही शिक्षक कहते रहें कि हमारे बार-बार करवाने के बावजूद बच्चे गणित को समझते क्यों नहीं, अपने आप करते क्यां नहीं, बच्चों को सवाल करने आते क्यों नहीं ?

फिर ये जो शिक्षाक्रम है वह क्या कोई कम काले-काले अक्षरों का रेगिस्तान है और रेगिस्तान बच्चों और बड़ों में कोई फर्क थोड़े ही करता है। बड़े लोग भी तो इसमें भूखे-प्यासे गर्मी में हाल बेहाल होते पन्ना नम्बर 3 से पन्ना नम्बर 59 और फिर पन्ना नंबर 88 पर आते-आते यह भूल जाते हैं कि शिक्षाक्रम के उद्देश्यों के भीतर गणित के मुख्य उद्देश्यों में 'मूर्त चीजों को देखकर अमूर्त अवधारणाएं बनाना और प्रतीकों में ढालना, देखी हुई चीजों एवं अनुभूत प्रक्रियाओं के आधार पर उनमें पैटर्न देखना और तार्किक निष्कर्ष निकालना गणित का आधारभूत क्षेत्र है'। अब शिक्षाक्रम के हर पन्ने को पढ़ना सिर पर धधकती धूप और गर्म रेत के बवंडरों में कोई मील भर की यात्रा से कम थोड़े ही है और 56 और 85 मील की इस बीहड़ यात्रा के दौरान कई चीजें दिमाग से गायब हो जाना तो लाजमी है। तभी तीसरे मील पर सोचे गए तीन उद्देश्यों में से दो तो 56वे मील पर गायब हो जाते हैं और नए उद्देश्यों में पहले नंबर पर 'शीघ्रता और शुद्धता के साथ गणना करने की योग्यता का विकास करना' आ जाता है यानी शंकुतला देवी जो कम्प्यूटर से भी तेज गति से कुछ गणनाएं कर लेती हैं वो अच्छी तरह से गणित को जानने वाली यानी गणितज्ञ हैं। भले ही गणितज्ञ की दुनिया में कोई भी उसे गणितज्ञ नहीं मानता हो। किताब बनाने वालों की निगाह में इसे पाने का एक मात्र रास्ता मशीनी ढंग से अभ्यास अभ्यास अभ्यास और बस अभ्यास रह जाता है। यदि किताबों में इसके लिए जगह कम पड़ जाए तो एक और नुस्खा हाजिर है - अभ्यास पुस्तिका ताकि बच्चों के दिलो दिमाग में गलती से भी यदि गणित से जुड़ी कोई खूबसूरत बात बच जाए तो वह इस रेगिस्तान में भाप बन कर उड़ जाए। अभ्यास पुस्तिका यानी बच्चों की यदि किताब से गणित नहीं आ रही तो मिलने वाली सजा।

राजस्थान की चित्रकला और उसमें भी यहां कि एक नहीं कई शैलियां बहुत मशहूर है जैसे किशनगढ़ की शैली, कोटा की शैली, नाथद्वारा की पिछवाई शैली, भील-मीणा और अन्य आदिवासियों जनजातियों की लोकचित्र शैलियां आदि, लेकिन इन किताबों को उन चित्रों से सजाने की बात कहने पर हो सकता है कि यह सवाल तुरंत पूछा जाए कि चित्रों की गणित की किताब में क्या जरूरत। वैसे यही सवाल आप इस बात पर भी पूछ सकते हैं कि हमारे घरों के दीवारों पर मांडने मांडने और लीपने की, रंगोली बनाने की, संझा बनाने की क्या जरूरत ? तो जिस जरूरत को हम अपने घरों, अपने कपडों, अपने कैनवासों पर रेखाएं खींच कर रंग रोगन कर सजा कर पूरी करते हैं वही जरूरत हमारी किताबों को सजाने में क्यों नहीं हो सकती है ? गणित की हद दर्जे की अमूर्त दुनिया के इस वीरान रेगिस्तान को अपने आसपास के पेड़, पौधों, फूलों, पत्तियों, पहाड़ों, घरों, गधों, बकरियों, गायों, भैंसों, गडरियों, बंजारों आदि के चित्रों से समृद्ध बनाने की कोशिश करने पर क्या रेगिस्तान में नखलिस्तान बनाने का आरोप लग जाने का खतरा है। ऐसे ही राजस्थान में पानी को संग्रह करने का सालों पुराना तरीका गणित को सिखाने के साथ-साथ चित्रों में क्यों नहीं आ सकता ? किसी कुंई को या किसी बावड़ी को बनाते समय क्या हम बड़े लोग गणित का इस्तेमाल नहीं करते और यदि बड़े जिस काम को गणित के बिना नहीं कर सकते वह काम गणित की किताबों में गणित सिखाने लायक भी क्यों नहीं माना जाता ? ऐसी ही कई पुरानी शैलियों के मकान बनाते समय गणित काम में आती है तो वे गणित सिखाने में काम क्यों नहीं आती।

और फिर सवालों का मामला बड़ा रोचक है, जिन इबारती सवालों से अच्छे-अच्छों का पसीना छूट जाता है उनकी शुरूआत अचानक और एक साथ की है ताकि बच्चे और शिक्षक मिलकर इस मुसीबत को एक साथ ही निबटा लें। जिंदगी में मुश्किल चीजों के लिए इंसान तैयारी करता है लेकिन इबारती सवालों की कोई तैयारी करवाने की जरूरत किताबों में महसूस नहीं की गई। यह माना गया कि मौखिक सवालों को शिक्षक हल करवाता ही आया है तो लिखित सवालों को पढ़कर बच्चे अपने आप ही हल कर लेंगे या आरंभ में लिखे सवालों को बोल कर शिक्षक हल करवाएगा और बाद में बच्चे अपने आप हल करने लग जाएंगे। यहा मूर्त से अमूर्त का सिद्धान्त छोड़कर अमूर्त से अमूर्त का सिद्धान्त सही मान लिया गया। फिर

सवालों को एक जिम्मेदारी और सौंपी गई है कि सरकारी कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देने की। तभी इस तरह के सवाल बच्चों से पूछे गए हैं कि पल्स पोलियों में कुल कितने बच्चों न दवा पी या जलदाय और विद्युत विभाग में कुल मिलाकर कितने कर्मचारी हैं या वन विभाग के पास कुल कितने पौधे हैं या बांध के निर्माण में कितने ट्रक पत्थर और आने शेष हैं या अकाल राहत कार्य में कुल कितने मजदूर काम पर लें या पंचायत समिति में कितने बालक पढ़ने आते हैं या पुल के निर्माण में कितने कट्टे सीमेन्ट और चाहिए या जिला मुख्यालय पर कितने होम गार्ड हैं या शिक्षाकर्मी विद्यालयों में अब कितने बैग देने शेष रहे आदि-आदि। ज्यादातर प्रश्नावलियों में तो इस तरह के सवाल दो-तीन की संख्या में हैं लेकिन उपरोक्त सभी उदाहरण तो कक्षा तीन की एक ही प्रश्नावली 2.2 में दिए गए हैं और किताबों में ऐसी जगहें और भी हैं।

शिक्षाक्रम में तो गणित शिक्षण का उद्देश्य सरकारी कार्यक्रमों की जानकारी देना नहीं लिखा है लेकिन सवालों के बहाने इन्हें शामिल कर लिया गया है। अब कोई अपने आप से पूछे कि सरकारी कार्यक्रमों से जुड़े सवाल बच्चों के दैनिक जीवन में कहां से आ गए ! और तो और इन सभी सवालों को आसपास से काट कर रखा गया है, जिले का कोई नाम नहीं है। पुल की कोई पहचान नहीं है। बांध की कोई जगह दैनिक जीवन की समस्याओं में नहीं है क्यों ? क्योंकि जगह का नाम देते ही उसकी असली भौतिक जगत से पहचान जुड़ जाएगी और गणित सीधे परिवेश से जुड़ जाएगा और उसकी अमूर्तता खत्म हो जाएगी तो वह कुछ सरल हो जाएगी और रेगिस्तान में थोड़ी हरियाली आ जाएगी और गणित का आतंक थोड़ा कम हो जाएगा। सवालों को रोचक और बच्चों की जिंदगी से जुड़ा होना उनकी रुचि उनमें बढ़ाएगी। लेकिन सवाल यह है कि क्या हम बच्चों की गणित में रुचि पैदा करने के लिए उनके आसपास की जिंदगी से जुड़ी समस्याएं उठा कर उन्हें थोड़ा सा रोचक बना कर पेश करने की जहमत उठाना चाहते हैं ? करीब ड़ेढ सौ साल पहले ऐसा स्कूल जिसकी अपने पड़ौस में चलने की कल्पना करना आज भी आम आदमी के लिए मुमकिन नहीं, डेढ़ सौ साल बाद भी शायद मुमकिन न हो, चलाने वाले लेव तोलस्तोय अपने यास्नाया पोल्याना स्कूल की नवंबर-दिसंबर माह की डायरी में लिख गए हैं कि ‘हर अध्यापक न जानते हुए भी सदा अपने लिए सबसे सुविधाजनक अध्यापन विधि खोजने की कोशिश करता है। कोई अध्यापन विधि अध्यापक के लिए जितनी सुविधाजनक होगी, विद्यार्थी के लिए वह उतनी ही असुविधाजनक होगी। पढ़ाने का वही ढंग ठीक है, जिससे विद्यार्थी संतुष्ट रहते हैं।’ यह बात शायद किताब बनाने वालों और उसे काम में लेने वाले शिक्षकों के लिए भी कही जा सकती है।

गणित में काम करने वाले जानते हैं कि गणित की अवधारणाएं बेहद अमूर्त होती हैं जैसे यदि हम किसी से कहें कि हमें ‘एक’ लाकर दो तो वह नहीं दे सकता, वह आपको ‘एक पेन’, ‘एक उल्लू’ ‘एक चूहा’ आदि लाकर तो दे सकता है लेकिन एक लाकर नहीं दे सकता, यानी एकपन या अकेलापन कोई गुण है जिसे इंसानों ने कभी किसी तरह खोज लिया और वह उसे किसी वस्तु आदि के साथ मिलाकर समझ पाता है। वैसे कई शिक्षक प्रशिक्षणों में यह पूछने पर कि क्या आप मुझे ‘एक’ लाकर दे सकते हैं, कई शिक्षक तो सवाल की सरलता में कुछ चालबाजी को भांप कर चुप रह जाते हैं। पर कई ऐसे भी होते हैं कि वे एक का अंक यानी 1 लिख कर दे देते हैं या किसी एक वस्तु को पकड़ा देते हैं। फिर उनसे यह कहने का कि यह तो 1 अंक या एक पेन या एक कॉपी आदि है, उन्हें इस बात में निहित अर्मूतता का कुछ भान होता है। जब बड़े लोगों का यह हाल है तो बच्चों को गणित की अवधारणाएं सीखने में कितनी मुश्किल होती होगी आप अंदाजा लगा सकते हैं। इसलिए बच्चों के साथ काम करने के लिए यह ठीक माना जाता है कि किसी भी नई अवधारणा की शुरूआत ठोस वस्तुओं से की जाए और उसे फिर चित्रों की मदद से समझाया जाए और तब उसे प्रतीकों के माध्यम से समझाया जाए। और ठोस वस्तुओं से चित्रों और चित्रों से प्रतीकों में आवाजाही तब तक जारी रखी जाए तब तक कि बच्चे का प्रतीकों पर इतना अधिकार न हो जाए कि वे प्रतीकों पर बिना चित्रों की मदद के काम करने पर अधिकार हासिल कर सकें। और जब चाहें इन प्रतीकों को संबंधित चित्रों और वस्तुओं में बदल कर समझ पाएं, यानी ठोस चीजों के साथ काम करना एक महत्त्वपूर्ण काम है जो हर अवधारणा की शुरूआत में इस तरह किया जाना चाहिए कि हर बच्चा ठोस चीजों यानी कंकर, सींकों आदि के साथ काम करता हुआ और उससे बनने वाली अवधारणा के बारे में कोई छवि बनाता हुआ और उस छवि के साथ उस अवधारणा का नाम और गणितीय प्रतीक को जोड़ता हुआ सीखे। लेकिन ज्यादातर जगह बेहद बारीक-बारीक अक्षरों में दिए गए निर्देशों में या तो हर बच्चे के पास सामग्री मौजूद हो इसका जिक्र तक करने से कतराया गया है या सिर्फ शिक्षक के पास सामग्री होने का जिक्र किया गया है। गोया शिक्षक को तो अवधारणा सीखनी हो बाकी बच्चों को उसे दूर से ही सूंघकर काम चलाना हो, आप चाहें तो देख सकते हैं कि कैसे सामग्री के उपयोग के नाम पर कुछ शिक्षक जोड़ करवाते समय अपनी जेब से माचिस निकाल कर उसमें से तीलियां निकालकर जोड़ का सवाल ठोस वस्तु से करना बच्चों को बाजीगर की तरह दिखलाते हैं। फिर उन तीलियों को जेब में रख बच्चों के हल करने के लिए सवाल सीधे ही बोर्ड पर लिख देते हैं। बहुत सारे तो सामग्री काम में ही नहीं लेते। ऐसी हालातों में सामग्री की आधी-अधूरी बात को या तो छोड़

देना या बारीक अक्षरों में इस तरह लिखना कि किसी का बमुश्किल ही ध्यान जाए गणित की समझ बनने क संभावना को किताब के बाहर का रास्ता दिखा देना है।

ज्यादातर निर्देश ऐसे हैं कि जिन्हें पढ़कर पढ़ने वाले के दिमाग में कोई साफ तस्वीर नहीं बनती कि दिया गया काम कैसे करना है। बहुत से निर्देश तो छोटे-छोटे एक दो वाक्यों में दिए गए हैं जिन्हें पढ़कर शिक्षक अपना मतलब खुद लगाने के लिए लिए स्वतंत्र हैं। कुछ जगहों पर निर्देश विस्तार से भी हैं और अच्छी तरह से भी हैं तो वहां पर बच्चों की भागीदारी गैर-मौजूद है।

कक्षा एक में तो किताब के साथ शिक्षक के लिए निर्देश देने का एक कारण समझ में आता है कि उस समय बच्चे पढ़ना सीख रहे हैं इसलिए उनके लिए निर्देशें की जरूरत है लेकिन कक्षा दो में एक तरफ तो हम बच्चे से हिंदी के तीन सौ शब्दों के पाठों के पढ़ने की उम्मीद लगाए बैठे हैं और दूसरी तरफ गणित सिखाते समय लिखित भाषा का उपयोग करने से इतना परहेज है कि ज्यादातर जगहों पर कुछ शब्दों और छोटे वाक्यों का उपयोग किया गया है और बाकी काम शिक्षक के करने के लिए गतिविधि में बारीक अक्षरों में लिखा गया है। क्या हम ऐसी भाषा विकसित नहीं कर सकते जिसकी मदद से बच्चे खुद पढ़कर और काम करते हुए गणित की समझ बनाते हुए सीखें ? कक्षा दो की किताब पढ़ते-पढ़ते बार- बार आप इस ख्याल से सराबोर हो सकते हैं कि जितने निर्देश शिक्षकों के लिए लिखे गए हैं उसकी जगह काश यह किताब शिक्षक की कम से कम मदद से बच्चों के खुद पढ़कर समझने के लए बनी होती।

किताब की भाषा तो कई जगह ऐसी है जिसे पहली बार पढ़ कर समझना कई बार कठिन हो जाता है। यह ठीक है कि गणित की अपनी अवधारणाएं और उनकी खास शब्दावली भी बनाने की जरूरत होती है लेकिन वह बेहद दुर्गम और बीहड़ हो यह तो जरूरी नहीं। शतांश, दशांश, सहस्त्रांश, वक्रतल, छायांकित, विस्तारित, क्रियात्मक चिन्ह, विक्रेता जैसे शब्दों और इनके पीछे दुबकी बैठी अवधारणाओं के लिए आम बोलचाल में सरल शब्द मौजूद न हों ऐसा नहीं है लेकिन शायद सवाल यही है कि हम इसे सरल बनाना चाहते हैं या नहीं।

ये किताबें अवधारणाओं को इतनी हड़बड़ी में सिखाकर मशीनी अभ्यास की ओर दौड़ जाती हैं कि बच्चे के दिमाग में अवधारणा ठीक से बनी या नहीं बनी, प्रतीकों पर उसका ठीक से अधिकार बना या नहीं यह जानने का समझने का वक्त उसके पास नहीं बचता। यह हड़बड़ी आप जोड़ की शुरूआत करते वक्त कक्षा 1 भाग दो के पृष्ठ संख्या 71 पर देख सकते हैं तो उसी किताब के पृष्ठ 93 पर भी देख सकते हैं जब बगैर संख्याओं के नामों को पूरा लिखे उनमें से 'इक' की 'ब' और 'बा-' की 'वन' और 'पन' की तुक की पहचान करवाई जा रही है। संख्या नामों में पैटर्न पकड़वाने की कोशिश की जा रही है और पृष्ठ भरा पड़ा है संख्या अंकों से, यानी माना यह जा रहा है कि संख्या को अंकों में पढ़कर बच्चे संख्या

इकाई का अंक	ध्वनि	संख्याएँ	दहाई का अंक	ध्वनि	संख्याएँ
1	इक	21, 31, 41, 51, 61, 71, 81, 91	1	[illegible]	11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18
2	[illegible], आ	12, 22, 32, 42, 52, 62, 72, 82, 92	2	ईस, बीस	21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28
3	[illegible]	13, 23, 33, 43, 53, 63, 73, 83, 93	3	तीस	31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38
4	चौ, चौं	14, 24, 34, 44, 54, 64, 74, 84, 94	4	लीस	41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48
5	[illegible]	15, 25, 35, 45, 55, 65, 75, 85, 95	5	वन, पन	51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58
6	सो, छ, छि	16, 26, 36, 46, 56, 66, 76, 86, 96	6	सठ	61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68

अंकों में पैटर्न पकड़ें, यही हड़बडी आप कक्षा तीन भिन्न वाली इकाई में भी देख सकते हैं जहां बगैर अनुचित भिन्न की बात किए उचित भिन्न सिखाने की कोशिश की जा रही है। अब अनुचित भिन्न का उदाहरण दिया ही नहीं गया तो बच्चा उचित और अनुचित में अंतर कैसे करेगा ? जिन भिन्न के सवालों को करते समय और अवधारणाओं को समझते समय बड़े बड़ों को भी अपने पुरखे याद आने लगते हैं उसमें कहीं तो भिन्न को ऐसे छापा है कि वह भिन्न है ही नहीं क्योंकि उसमें तो आकृति के सभी हिस्से खाली पड़े हैं जबकि उसके ही बाजू में अंकों में एक बटा तीन या दो बटा तीन या पांच बटा नौ या दो बटा नौ आदि लिखे हुए हैं। आप अफसोस ही कर सकते हैं कि कागज मोड़कर भिन्न बनवाने के लिए शिक्षक को निर्देश दिया गया है लेकिन बच्चों को कहने से बचा गया है। यदि कागज को वास्तव में मोड़कर भिन्न पर काम करवाना ही चाहते हैं

तो ऐसा काम बच्चों को सीधा करने में लिए पाठ लिखने में इसी बात ने रोड़ा अटका रखा है। क्या ऐसा पाठ नहीं लिखा जा सकता कि जैसे पढ़ते-पढ़ते बच्चा खुद कागज मोड़े, उसमें रंग भरे, उसके भिन्न को पहचाने और उसे लिखने का तरीका सीखे। हां यह जरूरत है कि इसके लिए स्कूलों में रंगों की व्यवस्था करनी पड़ेगी। रंग जिनके बिना हमारी दुनिया कितनी रंगहीन होती और हजारों स्कूलों की आज भी है।

राजस्थान के गणित के शिक्षाक्रम के पृष्ठ तीन के मुताबिक गणित का एक आधारभूत काम देखी हुई चीजों एवं अनुभूत प्रक्रियाओं के आधार पर उनमें पैटर्न देखना और उसमें तार्किक निष्कर्ष निकालना है यानी अनुभव के आधार पर पैटर्न को पकड़ना और उसका उपयोग करना है लेकिन संभवतः किताब बनाने वालों को इस बात पर भरोसा नहीं है इसलिए वे पहाड़ों में मौजूद पैटर्न पकड़वा कर बच्चों से पहाड़े बनवाने के बजाए 1 से लेकर 10 तक के पहाड़े खुद बनाकर देने का भारी बोझा खुद उठाते हैं और बच्चों को खुद पैटर्न पकड़कर पहाड़ा बनाने की क्षमता को विकसित करने से महरूम रखते हैं और इतने पर भी चैन नहीं पड़ता तो कक्षा दो में दस तक पहाड़े सिखाने के बाद कक्षा तीन में ग्यारह और बारह के पहाड़े खुद बनाकर पाठ में देते हैं और कक्षा चार में 20 तक के पहाड़े बना कर देते हैं, और इतने पर भी चैन नहीं पड़ता इसलिए कक्षा पांच में 21 से 31 का पहाड़ा बनाकर देते हैं। और साथ में बारीक अक्षरों में शिक्षकों को निर्देश भी कि वो 99 तक के पहाड़े बच्चों को सिखाए। कक्षा चार की ही किताब में बारीक अक्षरों में शिक्षक को यह निर्देश भी दिया गया है कि वह बच्चों को 10 से 20 तक के पहाड़े मौखिक रूप से व्यक्त करना जिसका कक्षाओं में स्वरूप रटना होता है उसकी जरूरत क्या है ? क्या उसका काम सिर्फ 10 तक के पहाड़ों से नहीं चल सकता ? तीसरा 9 साल के बच्चे से लेकर कब्र में पैर लटकाए बैठे लोगों में से कितनों को अपनी जिंदगी में 99 तक के पहाड़ों की जरूरत पड़ती है ? पहले सवाल के जवाब में मेरा अनुमान यह है कि हम सबको शायद यह भरोसा ही नहीं है कि कक्षा चार में पढ़ने वाला बच्चा पहाड़ों में निहित पैटर्न पकड़ने की क्षमता रखता है और न ही कक्षा चार का शिक्षक बच्चे को पहाड़ों की रचना करना सिखाने की क्षमता रखता है इसलिए हम किताबों में पहाड़े बनाकर बताते हैं और शिक्षक से बारीक अक्षरों में कह भी देते हैं कि तुम भी करवा देना। दूसरे सवाल के संदर्भ में मेरा अनुभव यह है कि मुझे न तो गणित सीखने में और न अपनी जिंदगी में कभी 10 से ज्यादा के पहाड़ों की जरूरत पड़ी है। तीसरे सवाल का जवाब हर पढ़ने वाला अपनी छोटी से लेकर लंबी ही जिंदगी में खुद तलाश कर ले।

तार्किक क्षमता या राजस्थान के शिक्षाक्रम के मुताबिक तार्किक शक्ति का विकास करना गणित का एक मुख्य काम है। तर्क करने के दो मुख्य तरीके हैं एक तो उदाहरणों की मदद से सामान्यीकरण करके नियम पहचानना और उसे काम में लेना और दूसरा परिभाषा को गढ़कर उसके मुताबिक उदाहरणों की खोज करना, ज्यादा आसान यह होता है कि हम किसी अवधारणा के कई उदाहरण लें और उनमें कोई पैटर्न या समानताएं खोजें फिर उससे नियम बनाएं लेकिन कक्षा चार पांच की किताबें कई बार इस आसान रास्ते के बजाए मुश्किल रास्ता चुनती हैं। शुरू में कुछ उदाहरण देकर यह भ्रम पैदा करती हैं कि उसने आसान रास्ता चुना है लेकिन बहुत जल्दी यह भ्रम दूर हो जाता है जब वह कूदकर तुरंत सूत्र या अवधारणा बताने लगती है, यानी उदाहरणों में पैटर्न को पकड़वा कर उसका सामान्यीकरण करवाकर नियम बनाने में मदद नहीं करती। यह कुछ-कुछ मृग मरीचिका जैसा है जो कि रेगिस्तान में खूब होता है जब कई बार आपको दूर से तो पानी दिखता है लेकिन पास जाने पर चिलचिलाती धूप में रेत ही रेत के सिवा कुछ नजर नहीं आता। चाहे आप औसत को देखें या ऐकिक नियम या किसी और अवधारणा को आप तुरंत भांप सकते हैं कि ये किताबें बच्चों की सामान्यीकरण की क्षमता पर बेहद संकोच के साथ भरोसा करने का दिखावा करती हैं। इसलिए इस बात का धैर्य भी नहीं रख पाती और न ही अपनी बुनावट में मौका देती हैं कि बच्चे उदाहरणों में पैटर्न पकड़कर नियम बनाएं।

मुश्किल परिस्थितियां इंसान के सामने चुनौती पेश करती हैं और के अनगिनत दरवाजे भी इन किताबों में संभावनाएं भरपूर हैं। रेगिस्तान में जीने वाले अपने जीवन को रसमय बनाने के लिए कई चीजें सृजित कर लेते हैं। चाहे वो संगीत हो, कढ़ाई हो, छपाई हो, नृत्य हो, कम से कम साधनों का बेहतर मितव्ययी ढंग से उपयोग करते हुए पर्याप्त समृद्ध जीवन जीने की कला भी सीख लेते हैं। इनमें समृद्धि इस बात से भी आने की संभावना है कि इन्हें बनाने वाला समूह मुख्यतः ब्राह्मण (पंड्या, वाजपेयी, त्रिवेदी), बनिया (मंत्री, जैन) व चौपड़ा से बढ़ें और इसमें भील, आदिवासी, मीणा, गरासिया, मुस्लिम, ईसाई आदि यानी हमारे समाज के विभिन्न समुदायों/वर्गों/धर्मों के लोग शामिल हों और इसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बना पाएं। सवाल यही है कि क्या हम राजस्थान के रेगिस्तान और पहाड़ी, पठारी व मैदानी इलाकों में सदियों से बसे इंसानों के जीवन से कुछ सीखकर इन किताबों को ऐसा बना सकते हैं कि ये कुछ उपयुक्त सामग्री के उपयोग से, अवधारणाओं को इस तरह सिखाने के तरीकों का उपयोग करके जिनमें बच्चे खुद समझते हुए ज्यादातर काम अपने आप करते हुए गणित में संगीत का सा रस लेते हुए सीख पाएं और हम गणित के इस रेगिस्तान की तमाम संभावनाओं को उजागर कर इसे हरा भरा बना पाएं। ◆